समलैंगिकता और जीव विज्ञान

चैंडलर बर

समलैंगिकता का मुद्दा अमरीका की राजनैतिक चेतना में प्रमुखता से उभर आया है। राष्ट्र इस बात को लेकर गर्मागरम बहस में उलझा है कि यू.एस. फौज में खुले आम समलैंगिक सैनिकों को स्वीकार किया गया है। अदालतों में कई मुकदमे चल रहे हैं जिनका सम्बंध विवाह, बच्चे गोद लेने, बीमा और विरासत जैसे मसलों में समलैंगिक लोगों के अधिकारों से है। यह मामला दो राज्यों में जनमत संग्रह तक पहुंचा है और एक राज्य (कोलेरैडो) में ऐसे सारे कानून निरस्त कर दिए गए हैं जो समलैंगिक लोगों के साथ भेदभाव करते हैं। वैसे तो समलैंगिकता का मुद्दा हमेशा से खदबदाता रहा है, और अब लग रहा है कि यह राजनैतिक भावनाओं को भी हवा देगा।

यह सही समय है जब जीव विज्ञान ने कुछ बुनियादी सवाल पूछना शुरू किया हैः समलैंगिकता क्या है? और कुछ जवाबों की रूपरेखा भी मिली है जो शायद हमारे स्वयं के बारे में आत्म ज्ञान को पुष्ट करेगी और शायद परोक्ष रूप से राजनीति को भी प्रभावित करेगी।

एक तो जीव वैज्ञानिक अनुसंधान में तकनीकी कठिनाइयां होती ही हैं, ऊपर से इस मामले में अतिरिक्त दिक्कत यह है कि - खास तौर से तंत्रिका जीव वैज्ञानिक अनुसंधान में दिक्कत यह है कि हमारे मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व की प्रकृति को शब्दों में व्यक्त करना बहुत मुश्किल है। इस व्यक्तित्व में तमाम किस्म के उद्दीपन और प्रतिक्रियाएं आती हैं, सौंदर्य बोध और कामुक संवेदनाएं आती हैं। इस तरह की चीज़ों की व्याख्या जीव विज्ञान के तहत करने में कई लोगों को थोड़ी हेकड़ी लगती है। कुछ अन्य लोगों को हेकड़ी तो नहीं बल्कि हल्ला-गुल्ला लगता है। उन्हें लगता है कि कुछ सुप्रचारित निष्कर्ष बौद्धिक बंद गली में मील के पत्थर साबित होंगे।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि तंत्रिका जीव वैज्ञानिक अनुसंधान अक्सर घोर अज्ञानता के माहौल में किया जाता है। दिमाग के अलग-अलग कामों को समझना तो दूर, दिमाग तो एक अंग के रूप में भी एक पहेली है। तंत्रिका जीव विज्ञान के क्षेत्र में सबसे ज़्यादा सुने जाने वाले शब्द हैंः 'हम नहीं जानते'। इसके मद्देनज़र और यह देखते हुए कि इसकी विषयवस्तु प्रायः राजनैतिक रूप से भड़काऊ होती है, पेशेवर वैमनस्य अपरिहार्य हैं और अक्सर कड़वाहट से भरे होते हैं। इस शोध में जुटे लोग वैज्ञानिक के साथ-साथ निजी कारणों से भी जुड़े हैं।

समलैंगिकता जीव विज्ञान को बरसों से आमंत्रित करती रही है। समलैंगिक व्यक्ति काफी समय से कहते आए हैं कि लैंगिक रुझान कोई निजी पसंद या जीवन शैली न होकर एक ऐसी चीज़ है जिसे अक्सर चुना नहीं जाता और जो अपरिवर्तनीय होती है। जिन विषमलैंगिक व्यक्तियों ने समलैंगिकों के साथ सुलह कर ली है, वह इस मान्यता को स्वीकार करके ही संभव हुई है। दरअसल 1980 के दशक से पूर्व जिस शब्द का उपयोग किया जाता था, वह था 'लैंगिक पसंद'। 1980 के दशक से 'लैंगिक रुझान' शब्द का उपयोग शुरू हुआ था जो दर्शाता है कि यौन इच्छाओं और प्यार की प्रकृति काफी गहरी है। इसकी बुनियाद जीव वैज्ञानिक है।

शोधकर्ता दो इतिहासों को देख सकते हैंः एक है लगभग एक सदी तक चली समलैंगिकता की अत्यंत समस्यामूलक मनोवैज्ञानिक खोजबीन। दूसरी है अत्यंत संक्षिप्त मगर निहायत पेचीदा जीव वैज्ञानिक शोध। यह जीव वैज्ञानिक शोध चूहों में अंडोत्सर्ग की जांच के साथ शुरू हुआ था। लैंगिक रुझान पर हुए हालिया अनुसंधान में जीव विज्ञान के तीन अलग-अलग क्षेत्र शामिल रहे हैंः तंत्रिका-शारीरिकी, मनो-अंतःस्रावी विज्ञान और जिनेटिक्स।

पृष्ठभूमि

जीव विज्ञान समलैंगिकता सम्बंधी अनुसंधान में तब घुसा

जब लैंगिक रुझान की पहेली को सुलझाने में विज्ञान की अन्य शाखाएं असफल रहीं। यानी बौद्धिक शून्य का माहौल था। यहां 'अन्य विज्ञान' से आशय मूलतः मनोचिकित्सा से है। समलैंगिकता की जिनेटिक खोजबीन के सबसे महत्त्वपूर्ण शोधकर्ता माइकल बैली और रिचर्ड पिलार्ड ने टिप्पणी की है कि समलैंगिकता के पर्यावरणीय (यानी सामाजिक व सांस्कृतिक) कारणों को लेकर दशकों तक चला मनोचिकित्सकीय अनुसंधान दर्शाता है कि ऐसे कारकों का प्रभाव बहुत कम होता है और कार्य-कारण सम्बंध बहुत अस्पष्ट हैं।

एक स्पष्ट अवधारणा के रूप में समलैंगिकता काफी नई है। '*वन हंड्रेड ईयर्स ऑफ होमोसेक्चुएलिटी*' में डेविड हाल्पेरिन बताते हैं कि यह शब्द सबसे पहले एक जर्मन पर्चे में प्रकट हुआ था। यह पर्चा लीपज़िग में 1869 में प्रकाशित हुआ था। इसके कुछ दशकों बाद होमोसेक्चुअल शब्द अंग्रेज़ी भाषा में शामिल किया गया था। अलबत्ता, यह बात काफी प्राचीन समय से ज्ञात रही है कि कुछ लोग अपने ही लिंग के अन्य व्यक्तियों के साथ लैंगिक क्रियाओं में रत होते हैं। मगर ऐतिहासिक रूप से देखें तो फोकस उन क्रियाओं पर था, न कि उनमें शामिल व्यक्तियों पर। इतिहासकार जॉन बॉसवेल ने बताया है कि मध्य युग में 'समान लिंगों के बीच यौन क्रिया' एक पाप समझी जाती थी, मगर जो लोग यह पाप करते थे, उनके बारे में यह नहीं कहा जाता था कि वे किसी विशेष किस्म के लोग हैं। सोलहवीं और अट्ठारवीं सदी के बीच समान लिंगों के बीच यौन क्रिया पाप होने के साथ-साथ अपराध भी कही जाने लगी थी मगर, एक बार फिर, ऐसे अपराध करने वाले लोगों को किसी विशेष किस्म के मनुष्यों के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया था।

यह सब उन्नीसवीं सदी में, आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के साथ बदल गया। खासकर मनोचिकित्सा विज्ञान के तहत समलैंगिकता को एक किस्म का मानसिक रोग माना जाने लगा। 1940 के दशक तक समलैंगिकता की बातें व्यक्तित्व की गड़बड़ी के रूप में की जाने लगीं - जैसे सायकोपैथिक, पेरानॉइड, शाइज़ॉइड वगैरह।

समलैंगिकता को एक रोग के रूप में परिभाषित करके मनोचिकित्सक व अन्य डॉक्टरों ने इसके उपचार का बीड़ा उठाया। एक मनोवैज्ञानिक जेम्स हैरिसन ने 1992 में एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म *चेंजिंग अवर माइंड्स* बनाई थी। उनका कहना है कि चिकित्सा व्यवसाय समलैंगिकता को इतनी नफरत से देखता था कि कोई भी इलाज अपनाने को सही मानता था। लेस्बियन (समलैंगिक स्त्रियों) को गर्भाशय निकलवाने (हिस्टरेक्टोमी) और एस्ट्रोजेन के इंजेक्शन लेने को मजबूर किया जाता था हालांकि यह स्पष्ट हो चुका था इनमें से कोई भी उपचार लैंगिक रुझान पर कोई असर नहीं डालता। समलैंगिक पुरुषों (गे पुरुषों) पर भी ऐसे ही अत्याचारी उपचार आज़माए जाते थे। *चेंजिंग अवर माइंड्स* में एक दृश्य में बताया गया है कि एक युवक की ट्रांसऑर्बाइटल सर्जरी की जा रही है - उसकी आंख के कोटर में एक सुई घुसाकर दिमाग में पहुंचाया जाता है। इस सुई की मदद से उसके दिमाग के प्रीफ्रंटल लोब को घिसकर छोटा कर दिया जाता है। हैरिसन की इसी फिल्म में यू.एस. नौसेना द्वारा बनाई गई एक शैक्षिक फिल्म का एक अंश भी शामिल किया गया है। अस्पताल में डॉक्टर एक समलैंगिक पुरुष को बिस्तर पर बांधकर शॉक देते हैं और कहते हैं कि हम तुम्हारी मदद कर रहे हैं। उस दौर में डॉक्टरों ने पुरुषों को वंध्या बनाने जैसे उपचारों का सहारा भी लिया था। सच्चाई यह है कि इनमें से किसी से भी लैंगिक रुझान में बदलाव नहीं होता था।

ऐसे ही शोधकर्ताओं में से एक थे अल्फ्रेड किन्सी। उनकी 1948 की रिपोर्ट *सेक्चुअल बिहेवियर इन दी ह्यूमन मेल* में दर्शाया गया था कि समलैंगिकता विविध परिवारों, वर्गों, शैक्षिक पृष्ठभूमियों और भौगोलिक पृष्ठभूमियों में समान रूप से पाई जाती है। अपनी पुस्तक *बीईंग होमोसेक्चुअल* में मनोचिकित्सक रिचर्ड इसे लिखते हैं:

> किन्सी व उनके सहयोगियों ने कई वर्षों तक ऐसे मरीज़ खोजने के प्रयास किए जिन्हें उपचार के दौरान विषमलैंगिक बना दिया गया हो, मगर उन्हें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसका लैंगिक रुझान बदला गया हो। जब उन्होंने ऐसे व्यक्तियों से मुलाकात की जिनका दावा था कि वे पहले समलैंगिक थे और अब विषमलैंगिकता अपना चुके

हैं, तो पता चला कि ये सारे पुरुष अपने समलैंगिक व्यवहार का दमन भर कर रहे थे...और संभोग का प्रयास करने से पहले ये अपनी शक्ति को बनाए रखने के लिए समलैंगिक फंतासियों का सहारा लेते थे। एक पुरुष का दावा था कि "हालांकि वह किसी समय समलैंगिक था, अब उसने वह सब छोड़ दिया है और वह पुरुषों के बारे में सोचता तक नहीं, सिवा उस समय के जब वह हस्तमैथुन करता है।"

मनोचिकित्सा यह दर्शा पाने में तो असफल रही ही कि समलैंगिकता पसंद का सवाल है, लचीली चीज़ है जिसे पलटा जा सकता है, बल्कि यह सिद्ध कर पाने में भी नाकाम रही कि समलैंगिकता कोई रोग है। 1956 में शिकागो में एक युवा मनोवैज्ञानिक एवलीन हुकर ने अमरीकन सायकोलॉजिकल सोसायटी के समक्ष एक अध्ययन प्रस्तुत किया था। हुकर को अपनी शिक्षा के दौरान सदैव यह सिखाया गया था कि समलैंगिकता एक रोग है। मगर उसका परिचय युवा समलैंगिक पुरुषों के एक समूह से था और वे सब तंदुरुस्त और सहज नज़र आते थे। उनमें से एक युवा ने हुकर से अनुरोध किया था कि वह उसके जैसे पुरुषों का अध्ययन करे। हुकर को इस अध्ययन के लिए नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ से अनुदान भी मिल गया। हुकर ने 30 समलैंगिक व 30 विषमलैंगिक पुरुषों के समूह चुने। इन 60 में से किसी ने कभी भी कोई मनोचिकित्सकीय उपचार प्राप्त नहीं किया था। हुकर का कहना है कि यह पहली बार हो रहा था कि चिकित्सा व्यवस्था या जेल से बाहर समलैंगिक व्यक्तियों का अध्ययन किया जा रहा था।

हुकर ने इन साठ व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण करवाया। इनमें एक परीक्षण का नाम रोर्शेक इंक-ब्लॉट परीक्षण था। इन परीक्षणों के आधार पर साठों व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक रूपरेखा तैयार की गई। हुकर ने इन रूपरेखाओं में से सारे पहचान चिन्ह हटा दिए थे (इन्हें पढ़कर यह पता नहीं लगाया जा सकता था कि कौन-सा विवरण किस व्यक्ति का है)। इसके बाद ये विवरण विश्लेषण के लिए तीन प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिकों को दिए गए। इनमें से एक मनोवैज्ञानिक ब्रुनो क्लोफर थे जिन्हें विश्वास था कि रोर्शेक परीक्षण के आधार पर वे समलैंगिकों व विषमलैंगिकों के बीच भेद कर सकते हैं। अलबत्ता, हुआ यह कि तीनों मनोवैज्ञानिक इनके बीच भेद नहीं कर पाए। अस्वस्थता और मानसिक स्वास्थ्य के लिहाज़ से दोनों समूह समान पाए गए।

हुकर का लंबा शोध कैरियर इस विश्वास पर टिका था कि यदि मनोचिकित्सा रत्ती भर भी वैज्ञानिक हुई, तो रुग्णता को वस्तुनिष्ठ ढंग से इस तरह परिभाषित करना होगा कि उसे प्रत्यक्ष देखा जा सके। हुकर का अध्ययन ऐसा पहला अध्ययन था जिसने यह दर्शाया कि समलैंगिकता को ऐसे रोग के रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। 1973 में अमरीकन मनोचिकित्सा संघ ने समलैंगिकता को अधिकारिक रूप से अपने निदान व सांख्यिकी मेनुअल में से हटा दिया। इसका मतलब हुआ कि अधिकारिक तौर पर समलैंगिकता कोई रोग नहीं रहा।

एकाध अपवाद को छोड़ दें, तो आजकल के मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सक लैंगिक रुझान बदलने की कोशिश नहीं करते और मनोचिकित्सा व मनोविज्ञान का मौजूदा प्रशिक्षण समलैंगिकता को एक रोग नहीं मानता।

शारीरिकी

जब समलैंगिकता मनोचिकित्सकीय रुग्णता के दायरे से निकलकर मानव लैंगिकता की सामान्य विविधता के दायरे में आ गई, तब शोध कार्यों में भी एक नया मोड़ आया। मनोचिकित्सा यह तो परिभाषित करने में सफल रही थी कि समलैंगिकता क्या नहीं है मगर यह समझाने में नाकाम रही थी कि यह क्या है। तो, यह सवाल तंत्रिका जीव विज्ञान के पाले में आ गया - सवाल था कि समलैंगिकता का कारण क्या है। क्या समलैंगिक और विषमलैंगिक लोग जैविक दृष्टि से भिन्न हैं? इस सवाल के बारे में सोचते हुए जीव वैज्ञानिक एक अन्य सम्बंधित सवाल की खोजबीन से प्राप्त निष्कर्षों से प्रभावित रहे हैं। वह सवाल हैः तंत्रिका विज्ञान की दृष्टि से स्त्री और पुरुष में क्या अंतर है?

1959 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के तंत्रिका-अंतःस्रावी

विशेषज्ञ चार्ल्स बैराक्लो ने पाया था कि यदि जन्म के ठीक बाद मादा चूहों को टेस्टोस्टेरोन (एक पुरुष हारमोन) का इंजेक्शन दे दिया जाए, तो इस हारमोन की असाधारण मात्रा उस मादा चूहे को सदा के लिए वंध्या बना देगी। वह अंडोत्सर्ग में अक्षम हो जाएगी। यहां 'अंडोत्सर्ग' शब्द का उपयोग दोनों अर्थों में किया गया है - एक तो सामान्य अर्थ में कि अंडाशय से अंडा निकलकर अंडवाहिनी में पहुंचे और दूसरा इस अर्थ में कि वे सारी हारमोनल क्रियाएं पूरी हों जो अंडा निकलने से पूर्व होती हैं, चाहे वास्तव में अंडा न निकले।

चूहों का इस्ट्रस चक्र छोटा होता है। हर चार दिनों में चूहे के शरीर की ग्रंथियां एस्ट्रोजेन (स्त्री यौन हारमोन) रक्त प्रवाह में छोड़ने लगती हैं और इसकी वजह से घटनाओं का एक पूरा सिलसिला शुरू हो जाता है। जब एस्ट्रोजेन की मात्रा एक निश्चित स्तर पर पहुंचती है, तो हायपोथेलेमस का एक हिस्सा उत्तेजित हो जाता है। हायपोथेलेमस दिमाग का एक छोटा-सा हिस्सा होता है जो शरीर के तापमान, भूख, प्यास और यौन इच्छा का नियमन करता है। हायपोथेलेमस उत्तेजित होकर एक अन्य ग्रंथि - पियूष ग्रंथि - को उत्तेजित कर देता है जो एक अन्य हारमोन छोड़ने लगती है - ल्यूटिनाइज़िंग हारमोन (एलएच)। यह हारमोन अंडाशय को अंडा मुक्त करने को प्रेरित करता है। बैराक्लो ने पाया कि मादा चूहों को जन्म के तत्काल बाद एक बार टेस्टोस्टेरोन दे दिया जाए, तो यह प्रक्रिया जीवन में कभी नहीं होती।

यदि यह खोज चकरा देने वाली थी, तो अगली खोज तो और भी विस्मयजनक थीः कि नर चूहे अंडोत्सर्ग कर सकते हैं (इस अर्थ में कि वे अंडोत्सर्ग से पूर्व के पूरे हारमोन चक्र से गुज़र सकते हैं)। 1965 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के तंत्रिका-अंतःस्रावी विशेषज्ञ जेफ्री हैरिस ने कुछ नवजात नर चूहों का वंध्याकरण कर दिया, जिसकी वजह से उनके शरीर वृषण से मिलने वाले टेस्टोस्टेरोन से वंचित हो गए। हैरिस ने पाया कि यदि वयस्क होने के बाद इन चूहों के शरीर में एस्ट्रोजेन का इंजेक्शन दिया जाए, तो वह उनके हायपोथेलेमस को उत्तेजित कर देता है जिसके चलते अंडोत्सर्ग की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। ज़ाहिर है, नर चूहों में अंडाशय या गर्भाशय तो होता नहीं, इसलिए वास्तविक अंडोत्सर्ग नहीं हो पाता। मगर यदि ऐसे चूहों में अंडाशय का प्रत्यारोपण कर दिया जाए तो अंडोत्सर्ग भी होता है।

आगे किए परीक्षणों ने एक विचित्र बात उजागर की। हैरिस ने पाया कि जहां नवजात नर चूहों को टेस्टोस्टेरोन से वंचित करने पर उनमें मादासदृश अंडोत्सर्ग हो सकता है, वहीं नवजात मादा चूहों को एस्ट्रोजेन से वंचित करने के बावजूद वे मादा के रूप में ही विकसित होती हैं। वयस्क होने पर वे नर समान नहीं दिखेंगी। चाहे मादा चूहे के अंडाशय निकाल दिए जाएं, उनके मस्तिष्क अंडोत्सर्ग के लिए ज़िम्मेदार हारमोन बनाते रहते हैं।

वैज्ञानिकों को यह समझ में आया कि टेस्टोस्टेरोन न हो, तो पुरुषत्व का जिनेटिक मानचित्र बेकार ही रहता है। वास्तव में उनका निष्कर्ष था कि एक नर चूहे के मस्तिष्क को नर-समान संयोजित करने के लिए जन्म के चंद दिनों के अंदर टेस्टोस्टेरोन से संपर्क अनिवार्य है। जन्म के पांच दिन बाद पुरुषत्व के विकास की संभावना समाप्त हो जाती है। इसके बाद जिनेटिक नर 'मादा' मस्तिष्क के साथ वयस्क होगा। दूसरी ओर मादा के मस्तिष्क को मादा समान बनाने के लिए एस्ट्रोजेन ज़रूरी नहीं होता; उसे तो बस अपने भरोसे छोड़ दिया जाए, तो वह मादा समान ही बनेगा।

तो, यह माना जाने लगा कि दोनों लिंगों के लिए 'डिफॉल्ट मस्तिष्क' तो मादा-समान है, और यदि उसे नर-समान बनाना है तो टेस्टोस्टेरोन देना होगा। इस अवधारणा को 'मस्तिष्क का लैंगिक विभेदीकरण' कहते हैं और यह लैंगिक रुझान की तंत्रिका वैज्ञानिक उत्पत्ति की खोज की बुनियादी अवधारणा रही है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के तंत्रिका वैज्ञानिक रॉजर गोर्स्की काफी समय से लैंगिक विभेदीकरण सम्बंधी शोध में लगे हैं। उनका कहना है, 'हम काफी समय से लैंगिक विभेदन की इस प्रक्रिया को समझने की कोशिश कर रहे हैं और उन कार्यों को समझने की कोशिश कर रहे हैं जो इसके तहत आते हैं - पुरुष यौन व्यवहार, स्त्री यौन व्यवहार, अंडोत्सर्ग का नियमन, भोजन सेवन का नियमन, शारीरिक वज़न, आक्रामक व्यवहार, मातृत्व सम्बंधी व्यवहार के कुछ पहलू। यह एक बुनियादी अवधारणा है कि मस्तिष्क

निहित रूप से मादा-समान होता है और यदि उसका विकास नर के रूप में होना है, तो उसका संपर्क नर हारमोन से होना ज़रूरी है।'

हैरिस के प्रयोगों के कई वर्षों बाद ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने शारीरिक स्तर पर उक्त सिद्धांत की पुष्टि की। उन्होंने बताया कि नर चूहों और मादा चूहों के मस्तिष्क (भेजे) में प्रेक्षणीय अंतर होते हैं। 1971 में शारीरिकी विशेषज्ञ जेफ्री राइसमैन और पौलीन फील्ड ने एक शोध पत्र में सायनेप्सेस की तुलना की थी। सायनेप्सेस तंत्रिकाओं को आपस में जोड़ते हैं। राइसमैन व फील्ड ने पाया कि नर व मादा चूहों के हायपोथेलेमस के सायनेप्स में फर्क होता है। उस समय प्रचलित मत यह था कि नर व मादा भेजे एक जैसे होते हैं। राइसमैन और फील्ड ने पाया कि नर व मादा चूहों के भेजों में हायपोथेलेमस में सायनेप्स की संख्या में अंतर होता हैः मादा में ज़्यादा सायनेप्स होते हैं। कहने का मतलब यह था कि चूहों के भेजों में कार्यों के लिहाज़ से तो लैंगिक भेद होता ही है, संरचना की दृष्टि से भी फर्क होता है। यानी भेजे लैंगिक द्विरूपी होते हैं।

1977 में रॉजर गोर्स्की के नेतृत्व में एक दल ने एक और द्विरूपता खोज निकाली। यह भी हायपोथेलेमस में ही थी। यह देखा गया कि चूहों के हायपोथेलेमस में कोशिकाओं का एक पुंज होता है जो नर चूहों में पांच गुना बड़ा होता है। गोर्स्की ने देखा कि वे नंगी आंखों से इस हिस्से को देखकर लगभग 100 फीसदी सटीकता से चूहे का लिंग बता सकते हैं। गोर्स्की के दल ने इस कोशिका पुंज को नाम दिया था लैंगिक द्विरूपी केंद्रक। इसका कार्य पता नहीं है।

तो चूहों पर शोध के ज़रिए धरातल तो तैयार हो चुका था। अगला कदम यह देखने का था कि क्या मानव भेजे में किसी तरह की द्विरूपता नज़र आती है। 1982 में कोशिका जीव वैज्ञानिक क्रिस्टीन डी लाकोस्टे-उतमसिंग और भौतिक मानव वैज्ञानिक रैल्फ हॉलोवे ने मानव भेजे की एक रचना (कॉर्पस कैलोसम) की छानबीन के परिणाम *साइन्स* में प्रकाशित किए थे। कॉर्पस कैलोसम एक लंबी, संकरी रचना होती है जो तंत्रिका एक्सॉन से बनी होती है और दिमाग के दाएं व बाएं गोलार्धों को जोड़ती है, उनके बीच सूचनाओं का प्रेषण करती है। यह भेजे में काफी बड़ी व आसानी से पहचानी जाने वाली रचना है। कई वर्षों से यह भेजा-सम्बंधी शोध का प्रमुख विषय रही है। डी लाकोस्टे-उतमसिंग और हॉलोवे ने देखा कि कार्पस कैलोसम का एक हिस्सा (नाम स्प्लेनियम) दो लिंगों के बीच बहुत अलग-अलग होता हैः स्त्रियों में स्प्लेनियम बड़ा होता है। फर्क इतना अधिक होता है कि कोई भी इसे देखकर व्यक्ति का लिंग बता सकता है। डी लाकोस्टे-उतमसिंग और हॉलोवे के इस अध्ययन को खूब उद्धरित किया जाता है हालांकि बाद में कई प्रयासों के बावजूद इसे फिर से देखा नहीं जा सका है। यह काफी विवाद का विषय है कि कार्पस कैलोसम में इस तरह की द्विरूपता का अस्तित्व है भी या नहीं।

1985 में, नेदरलैण्ड्स इंस्टीट्यूट ऑफ ब्रेन रिसर्च के डिक स्वाब ने भी पाया कि उन्हें भी मानव भेजे में लैंगिक द्विरूपता के प्रमाण मिले हैं। उन्होंने यह द्विरूपता भेजे के उसी हिस्से में पाई जो इन्सानों में उस हिस्से के तुल्य है जिसे गोर्स्की ने चूहों में लैंगिक द्विरूपी केंद्रक कहा था।

इसके पांच साल बाद स्वाब ने और भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण घोषणा कीः मानव भेजे में सुप्राचिएस्मेटिक न्यूक्लियस नामक रचना में लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है। स्वाब ने दावा किया कि सुप्राचिएस्मेटिक न्यूक्लियस विषमलैंगिक पुरुषों की अपेक्षा समलैंगिक पुरुषों में पूरा दुगना बड़ा होता है।

यदि यह सही है, तो यह एकदम नई बात थीः समलैंगिक व विषमलैंगिकों के बीच संरचनागत अंतर।

साइमन लीवे एक तंत्रिका जीव वैज्ञानिक हैं। वे समलैंगिकता पर सबसे महत्त्वपूर्ण गैर-जीव वैज्ञानिक लेख के लेखक रहे हैं। वे कहते हैं, 'जीव वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के बीच बहुत भेद नहीं करना चाहिए। लोग जिस चीज़ तक पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं वह है कुदरती तौर पर निर्धारित प्रक्रियाओं और सांस्कृतिक रूप से निर्धारित प्रक्रियाओं के बीच अंतर। मगर लोग इस अंतर को गड्ड-मड्ड करके कहने लगते हैं कि यह जीव विज्ञान और मनोविज्ञान के बीच का अंतर है। ऐसा नहीं है। ये एक ही चीज़ - मस्तिष्क - को देखने के दो नज़रिए हैं। जीव

वैज्ञानिक लोग इसे नीचे से ऊपर की ओर देखते हैं - सायनेप्स और अणुओं से शुरू करते हैं - जबकि मनोवैज्ञानिक ऊपर से देखना शुरू करते हैं - व्यवहार वगैरह से शुरू करते हैं।'

लीवे स्वाब के अनुसंधान से चक्कर में पड़ गए हैं। मगर उन्हें हैरानी इस बात पर है कि स्वाब ने भेजे के जिस हिस्से को देखा उसका यौन व्यवहार के नियमन से कुछ लेना-देना नहीं है। सुप्राचिएस्मेटिक न्यूक्लियस शरीर की दैनिक ताल का नियमन करता है। वास्तव में जांच तो हायपोथेलेमस की होनी चाहिए जो यौन व्यवहार से सम्बंधित है।

गोर्स्की की प्रयोगशाला में शोध छात्र लौरा एलेन ने हायपोथेलेमस के अगले भाग में तंत्रिकाओं के चार छोटे-छोटे समूह पहचाने थे जिन्हें उसने आईएनएएच 1, 2, 3 और 4 नाम दिए थे। एलेन के शोध से पता चला था कि इन्सानों में आईएनएएच 2 तथा 3 में लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है। ये पुरुषों में अपेक्षाकृत काफी बड़े होते हैं। तो क्या यह संभव है कि इन केंद्रकों में लैंगिक रुझान के अनुसार भी अंतर होते हों? लीवे के अनुसंधान का केंद्र यही था। उन्होंने अपने निष्कर्ष अगस्त 1991 में *साइन्स* में प्रकाशित किए थे। इस शोध पत्र की भूमिका में लीवे लैंगिक रुझान को 'अपने ही लिंग या विपरीत लिंग के सदस्य के प्रति यौन भावनाओं या व्यवहार की दिशा' के रूप में परिभाषित करते हैं। वे मानते हैं कि एलेन द्वारा पहचाने गए आईएनएएच केंद्रक 'पुरुष-समान यौन व्यवहार' पैदा करने में शामिल हैं। वे कहते हैं: मैंने इस बात की जांच की कि इनमें से एक या दोनों केंद्रक लिंग के साथ नहीं बल्कि लैंगिक रुझान के साथ आकार में द्विरूपता दर्शाते हैं। विशिष्ट रूप से, मेरी परिकल्पना थी कि आईएनएएच 2 या आईएनएएच 3 उन व्यक्तियों में बड़ा होता है जो स्त्रियों के प्रति उन्मुख होते हैं (यानी विषमलैंगिक पुरुष और समलैंगिक स्त्रियां) और उन व्यक्तियों में छोटा होता है जो पुरुषों की ओर उन्मुख होते हैं (यानी विषमलैंगिक स्त्रियां और समलैंगिक पुरुष)।

लीवे ने शव परीक्षा के उपरांत उपलब्ध हुए 41 शवों के भेजे के ऊतकों की जांच की। ये सभी व्यक्ति न्यूयॉर्क और कैलीफोर्निया के अस्पतालों में मरे थे। इनमें 19 समलैंगिक पुरुष थे जो सब एड्स से मरे थे, 16 विषमलैंगिक पुरुष थे, जिनमें से 6 इंट्रावीनस नशीली दवाइयां लेने के आदी थे, और 6 विषमलैंगिक स्त्रियां थीं। समलैंगिक स्त्रियों (लेस्बियन) के भेजों के ऊतक उपलब्ध नहीं हो सके थे। लीवे के निष्कर्ष निम्नानुसार थे:

> आईएनएएच 3 में द्विरूपता देखी गई...समलैंगिक पुरुषों की तुलना में विषमलैंगिक पुरुषों में इस केंद्रक का आयतन दुगना पाया गया...इसी प्रकार के अंतर विषमलैंगिक पुरुषों और स्त्रियों के बीच भी पाए गए...ये आंकड़े इस परिकल्पना की पुष्टि करते हैं कि आईएनएएच 3 लिंग के अनुसार नहीं बल्कि लैंगिक रुझान के अनुसार द्विरूपता दर्शाता है।

परिणाम इतने साफ थे कि लीवे यह कह पाए कि "एक ऐसा केंद्रक है जो विषमलैंगिक व समलैंगिक पुरुषों के बीच द्विरूपता दर्शाता है, यह खोज दर्शाती है कि मनुष्यों में लैंगिक रुझान का अध्ययन जीव वैज्ञानिक के स्तर पर किया जा सकता है।"

वैसे स्वयं लीवे मानते हैं कि इस अध्ययन में कई खामियां थीं: नमूने का छोटा आकार, व्यक्ति-व्यक्ति में केंद्रक की साइज़ में अंतर, और समलैंगिक पुरुषों का एड्स से पीड़ित होना वगैरह। वैसे लीवे को एड्स से मरने वाले समलैंगिक पुरुषों और अन्य कारणों से मरने वाले समलैंगिक पुरुषों के आईएनएएच 3 की साइज़ में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं दिखा था।

ये पंक्तियां लिखे जाने तक लीवे के परिणामों को अन्य अध्ययनों में देखा जाना बाकी था। स्वयं लीवे ने लैंगिक रुझान के अनुसार द्विरूपता कॉर्पस कैलोसम में भी देखने की कोशिश की है। वे इसका अध्ययन मेग्नेटिक रिज़ोनेन्स इमेजिंग द्वारा कर रहे हैं। जब तक लीवे के मूल निष्कर्ष की पुष्टि नहीं हो जाती तब यह एक रोमांचक अटकल ही मानी जाएगी कि समलैंगिक और विषमलैंगिक पुरुषों के बीच शारीरिक अंतर होते हैं।

गौरतलब है कि भेजे में किसी भी किस्म की द्विरूपता एक तल्ख विवाद का विषय है। समलैंगिक व विषमलैंगिक पुरुषों के भेजे में संरचनागत फर्क होंगे, इस विचार का आधार यह है कि स्त्री और पुरुषों के भेजे बनावट के

लिहाज़ से भिन्न होते हैं। यह बात डी लाकोस्टे-उतमसिंग व हॉलोवे द्वारा कॉर्पस कैलोसम के अध्ययन में उभरी थी। वास्तव में वह अध्ययन ही समस्यामूलक बना हुआ है और उसकी पुनरावृत्ति के प्रयासों के परिणाम बेमेल रहे हैं।

एन फौस्टो-स्टर्लिंग एक वैकासिक जिनेटिक विज्ञानी हैं। वे तथा एक तंत्रिका वैज्ञानिक व मनोचिकित्सक विलियम बायन समलैंगिकता की तंत्रिका वैज्ञानिक खोजबीन के प्रमुख आलोचक रहे हैं। फौस्टो-स्टर्लिंग ने लैंगिक द्विरूपता के परिणामों को दोहराने की कोशिशों को सिलसिलेवार प्रस्तुत किया है। कुल मिलाकर द्विरूपता सम्बंधी परिणाम एकरूप नहीं रहे हैं। लीवे तो कॉर्पस कैलोसम में द्विरूपता की खोज को सबसे लंबा चला धारावाहिक कहते हैं हालांकि आजकल वे स्वयं इसमें एक किरदार बन गए हैं।

यदि लीवे द्वारा किया गया हायपोथेलेमस अध्ययन खरा भी साबित होता है, फिर भी उसके आधार पर बढ़-चढ़कर निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। सिर्फ अंतर की उपस्थिति के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह अंतर कोई भूमिका निभाता है।

रासायनिक पहेलियां

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि मादा चूहों को नर हारमोन का इंजेक्शन देने पर वह अन्य मादाओं के प्रति यौन व्यवहार करने लगती है। इसी प्रकार से वंध्याकृत नर चूहे को एस्ट्रोजेन का इंजेक्शन देने पर वह अन्य नर चूहों के यौन संपर्क पर सकारात्मक प्रतिक्रिया देने लगता है।

जंतुओं पर किए गए इस तरह के अध्ययनों से यह परिकल्पना उभरी कि मनुष्यों में हारमोन समलैंगिकता को जन्म देते हैं। वैसे कई वैज्ञानिक इस मामले में जंतुओं पर किए गए अध्ययनों को बेकार मानते हैं। चाहे जो भी माने पर इतना तो है कि जंतु अध्ययनों ने शोधकर्ताओं को सोचने पर मजबूर ज़रूर किया है।

ऐसे ही एक शोधकर्ता हैं जर्मनी के गुन्टर डॉर्नर। 1970 के दशक में डॉर्नर ने समलैंगिकता को ''केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की छद्मउभयलिंगता'' के रूप में वर्गीकृत किया था। इसका अर्थ यह था कि वे मानते थे पुरुष समलैंगिकों के भेजों में स्त्री के संभोग केंद्र होते हैं मगर शरीर पुरुष का होता है। कई दशकों तक अंतःस्रावी विशेषज्ञों का अनुमान था कि चूंकि पुरुष यौन हारमोन मनुष्यों में मर्दाना शारीरिक गुणधर्मों के लिए जवाबदेह होते हैं और कुछ जंतुओं में यही हारमोन कतिपय नर यौन व्यवहारों के लिए जवाबदेह होते हैं, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वयस्क समलैंगिक पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन का स्तर कम होता होगा या एस्ट्रोजेन का स्तर उच्च होता होगा। इसके अलावा, इस मान्यता का एक अर्थ यह भी निकलता है कि समलैंगिक पुरुषों और विषमलैंगिक स्त्रियों में परस्पर विपरीत पैटर्न दिखना चाहिए। इसे लैंगिक रुझान का 'वयस्क हारमोन सिद्धांत' कहते हैं। डॉर्नर का दावा था कि कुछ शुरुआती अध्ययनों से इसकी पुष्टि होती थी।

1984 में, कोलंबिया विश्वविद्यालय की तंत्रिका जीव वैज्ञानिक हाइनो मेयर-बालबर्ग ने इस सिद्धांत की जांच करने के मकसद से किए गए 27 अध्ययनों के परिणामों का विश्लेषण किया था। उनके मुताबिक 20 अध्ययनों में तो समलैंगिक व विषमलैंगिक पुरुषों के टेस्टोस्टेरोन या एस्ट्रोजेन के स्तर में कोई अंतर नहीं पाया गया। तीन अध्ययनों में पता चला था कि समलैंगिक पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन का स्तर विषमलैंगिक पुरुषों से उल्लेखनीय रूप से कम था। वैसे बॉलबर्ग का मत है कि इनमें से दो अध्ययनों में पद्धतिगत खामियां थीं जबकि तीसरे में व्यक्तियों ने नशीली दवाइयों का सेवन किया था। इसके अलावा, दो अध्ययनों में समलैंगिक पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन का स्तर ज़्यादा पाया गया था। एक अध्ययन में तो द्विलैंगिक पुरुषों में टेस्टोस्टेरोन का स्तर समलैंगिक व विषमलैंगिक दोनों से अधिक था।

जब यह स्पष्ट होने लगा कि वयस्क हारमोन स्तरों का लैंगिक रुझान से कोई सम्बंध नहीं है, तो वैज्ञानिकों ने अपना ध्यान जन्म-पूर्व हारमोन संपर्क पर केंद्रित करना शुरू कर दिया। मनुष्यों में कई ग्रंथियां जन्म से पहले ही काम करना शुरू कर देती हैं और हारमोन का स्राव करने लगती हैं। ये हारमोन व्यक्ति के कई गुणधर्म निर्धारित करते हैं। ऐसा सोचा गया कि शायद जन्म-पूर्व हारमोन के स्तरों में

अंतर लैंगिक रुझान के लिए जवाबदेह है। इस सोच के आधार पर चूहों और बंदरों पर कुछ निर्मम प्रयोग किए गए।

मेयर-बॉलबर्ग जन्मजात एड्रीनल हायपरप्लेसिया (सीएएच) को एक मॉडल हारमोनल लक्षण मानती हैं जिसका उपयोग यौन हारमोन के जन्म-पूर्व असामान्य स्तर की खोजबीन करने में किया जा सकता है। सीएएच स्त्री व पुरुष दोनों को प्रभावित कर सकती है। यह एक सामान्य-सी गड़बड़ी की वजह से होती है - एक एंज़ाइम की गड़बड़ी की वजह से भ्रूण की एड्रीनल ग्रंथि कॉर्टिसॉल का निर्माण नहीं कर पाती। कॉर्टिसॉल एक महत्त्वपूर्ण हारमोन है। सामान्य भ्रूण में एड्रीनल ग्रंथि कॉर्टिसॉल का निर्माण करती है और मस्तिष्क धैर्यपूर्वक इन्तज़ार करता है। जब कॉर्टिसॉल का स्तर सही स्तर पर पहुंच जाता है तो इसका निर्माण रोक दिया जाता है। मगर सीएएच पीड़ित भ्रूण में कॉर्टिसॉल का निर्माण करने वाले एंज़ाइम के अभाव में मस्तिष्क को ये संकेत नहीं मिलते। लिहाज़ा वह एड्रीनल ग्रंथि को उत्पादन बंद करने का निर्देश नहीं देता। एड्रीनल ग्रंथि वह चीज़ बनाती चली जाती है जिसे वह कॉर्टिसॉल मानती है। मगर अनजाने में वह एंड्रोजेन्स बनाती रहती है, जो पुरुषनुमा गुणधर्म पैदा करते हैं। लिहाज़ा भ्रूण का संपर्क ज़रूरत से ज़्यादा एंड्रोजेन्स होता है।

इसके परिणाम स्त्रियों में नाटकीय होते हैं। रॉजर गोर्स्की ने मुझे कुछ फोटोग्राफ दिखाए और पूछा, "किस लिंग का है?" मैंने फोटो को देखा और शिश्न देखकर कहा कि यह लड़का है। गोर्स्की ने फिर पूछा, 'मगर वृषण कहां हैं?' मैंने थोड़ा ध्यान से देखा तो वृषण कहीं नज़र नहीं आए।

यह एक सीएएच बच्चे का फोटो था। गोर्स्की ने बताया कि इस मामले में जन्म के समय डॉक्टरों ने फैसला किया था कि वह लड़का है जिसके वृषण शरीर से बाहर नहीं निकले हैं। यह एक अपेक्षाकृत आम दिक्कत है। मगर हकीकत यह थी कि यह जिनेटिक रूप से एक लड़की थी।

चूंकि सीएएच लड़की के आंतरिक अंग तो स्त्री के होते ही हैं, उसके यौनांगों को स्त्रीनुमा बनाया जा सकता है और उसे एक लड़की के रूप में पाला जा सकता है। मगर हारमोन्स संभवतः उसके मस्तिष्क को प्रभावित कर चुके होते हैं। कम से कम यौन-रुझान के जन्म-पूर्व हारमोन सिद्धांत के प्रवर्तक तो यही मानते हैं। सीएएच स्त्रियों का यौन रुझान उनकी बात की पुष्टि करता है।

जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के यौन सम्बंधी शोधकर्ता जॉन मनी द्वारा 1984 में किए गए एक अध्ययन में पता चला था कि 37 प्रतिशत सीएएच स्त्रियों ने स्वयं को समलैंगिक (लेस्बियन) अथवा द्विलैंगिक के रूप में पहचाना था। फिलहाल आम आबादी में लेस्बियन्स का अनुपात 2-4 प्रतिशत है।

क्या यौन रुझान को समझने में जन्म-पूर्व हारमोन सिद्धांत एक उपयोगी धारणा है? इस बात को समझने के लिए हमें एक और चीज़ पर विचार करना होगा जिसे ल्यूटिनाइज़िंग हारमोन फीडबैक कहते हैं। मस्तिष्क कई हारमोन्स का स्राव करता है जिनमें से एक है ल्यूटिनाइज़िंग हारमोन (एलएच)। एलएच स्त्रियों के अंडाशय में एक अंडाणु के विकास की शुरुआत करता है। जब अंडे का विकास होने लगता है, तो अंडाशय बढ़ती मात्रा में एस्ट्रोजेन का स्राव करता है। एस्ट्रोजेन मस्तिष्क को और अधिक एलएच निर्माण के लिए उकसाता है और एलएच और अधिक एस्ट्रोजेन के निर्माण का सबब बनता है। इसे धनात्मक फीडबैक चक्र कहते हैं। पुरुषों में एस्ट्रोजेन सामान्यतः एलएच के निर्माण को दबाता है - यह ऋणात्मक फीडबैक होता है। इन्सानी एलएच फीडबैक में यह अंतर है। इसके साथ इस खोज को देखिए कि जन्म के बाद हारमोन की दृष्टि से परिवर्तित नर चूहों में धनात्मक एलएच फीडबैक भी देखा गया है और समलैंगिक व्यवहार भी। इसी आधार पर कुछ शोधकर्ताओं ने उक्त परिकल्पना विकसित की थी। उनका अनुमान था कि समलैंगिक पुरुषों के मस्तिष्क जन्म-पूर्व वृषण हारमोन्स के प्रभाव में संयोजित नहीं हो पाते, ठीक उसी तरह जिस तरह से स्त्रियों के मस्तिष्क नहीं होते। लिहाज़ा, ऐसे पुरुषों का एलएच फीडबैक विषमलैंगिक स्त्रियों के समान धनात्मक होगा। यदि ऐसा ही फीडबैक एकरूप ढंग से समलैंगिक पुरुषों में पाया जाए (एस्ट्रोजेन का इंजेक्शन देने के बाद रक्त का रासायनिक विश्लेषण करके) तो क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं माना जाएगा कि जन्म-पूर्व कोई निर्णायक

हारमोनल प्रक्रिया घटी है जिसका सीधा असर लैंगिक रुझान पर होता है?

खोजबीन के इस नज़रिए ने अध्ययन का एक और क्षेत्र खोला है जिसमें फिलहाल हाथ में कुछ नहीं है। अनिश्चितताएं दो किस्म की हैं: क्या जिस तरह के एलएच फीडबैक पैटर्न की तलाश की जा रही है, वैसा कोई पैटर्न इन्सानों में होता भी है? और क्या इन पैटर्न्स से हमें जन्म-पूर्व हुई घटनाओं के बारे में कुछ पता चल पाएगा? बदकिस्मती से, तमाम प्रयासों के बावजूद तंत्रिका वैज्ञानिकों के पास इन दोनों सवालों के स्पष्ट जवाब नहीं हैं। विभिन्न अध्ययनों में परस्पर विपरीत आंकड़े मिले हैं। आज तक किसी तंत्रिका वैज्ञानिक ने ऐसी कोई चीज़ नहीं खोजी है, जिसे 'समलैंगिक रक्त परीक्षण' माना जा सके।

1990 में *जरनल ऑफ चाइल्ड एंड एडोलेसेंट सायकोफार्मेकोलॉजी* में प्रकाशिक एक आलेख में हाइनो मेयेर-बॉलबर्ग ने हारमोन सम्बंधी शोध का सर्वेक्षण करके निष्कर्ष निकाला था: "आज तक प्राप्त प्रमाण में एकरूपता नहीं है, अधिकांश अध्ययन पद्धति की दृष्टि से संतोषजनक नहीं हैं, और परिणामों की वैकल्पिक व्याख्या की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।" साथ ही, मेयर-बॉलबर्ग आगे कहती हैं, "मगर समलैंगिकता की मनो-अंतःस्रावी व्याख्या के सारे रास्तों की खोज नहीं हुई है।"

ऐसे ही एक बचे हुए रास्ते की छानबीन रिचर्ड पिलार्ड कर रहे हैं।

पिलार्ड का ख्याल है कि उनका पारिवारिक चित्र इस शोध को करने के लिए बहुत मुफीद है। वे, उनका भाई और बहन समलैंगिक हैं। उन्हें यकीन है कि उनके पिता भी समलैंगिक थे। उनकी तीन में से एक बेटी द्विलैंगिक है। पिलार्ड का मत है कि इस तरह का पारिवारिक इतिहास किसी जीव वैज्ञानिक व्याख्या की मांग करता है।

पिलार्ड का कहना है कि उन्हें ट्रांससेक्चुअल व्यक्तियों ने सदा से हैरान किया है - ट्रांससेक्चुअल्स उन व्यक्तियों को कहते हैं जो विपरीत लिंग का शरीर अपनाना चाहते हैं। ट्रांससेक्चुअल्स को लेकर हैरानी की बात यह है कि वे समलैंगिक व्यक्तियों से बहुत भिन्न होते हैं: "आप सोचेंगे कि वे पूरे परास के अंतिम छोर पर हैं - समलैंगिकों में सबसे अधिक समलैंगिक।" मगर ट्रांससेक्चुअल्स दरअसल समलैंगिक नहीं होते। जहां समलैंगिक पुरुष स्वयं को बड़ी सहजता और स्थायी रूप से पुरुष ही मानते हैं, वहीं ट्रांससेक्चुअल पुरुष मानते हैं कि वे स्त्री हैं जो पुरुष शरीर में फंस गई है। पिलार्ड और उनके एक सहकर्मी मनोवैज्ञानिक जेम्स वाइनरिच ने शुरुआत इस परिकल्पना से की कि समलैंगिक पुरुष वे पुरुष हैं जो गर्भ में आंशिक लैंगिक व मनोलैंगिक परिवर्तनों से गुज़रे हैं। ज़्यादा स्पष्ट रूप से, उनकी परिकल्पना थी कि हालांकि समलैंगिक पुरुष पुरुषीकरण से तो गुज़रते हैं - आखिर वे शारीरिक रूप से पूरी तरह पुरुष हैं - मगर वे इसी प्रक्रिया के एक अन्य भाग यानी डीफेमिनाइज़ेशन (स्त्री गुणों की समाप्ति) से पूरी तरह नहीं गुज़रते।

पिलार्ड कहते हैं कि भ्रूण के रूप में दोनों लिंगों के मनुष्यों की शुरुआत में नर व मादा दोनों के पूर्व-अंग होते हैं - योनि, गर्भाशय और अंडवाहिनी के रूप में मादा अंग तथा शुक्रवाहिनी, शुक्राशय, स्खलन नलिकाओं के रूप में नर अंग। इन पैकेजेस को मुलेरियन (मादा) तथा वुल्फियन (नर) नलिकाएं कहा जाता है। ये पेट के निचले भाग में ऊतकों की नलिकाएं होती हैं। यौन अंगों का विकास कैसे होता है? इनका विकास पुरुष व स्त्री में अलग-अलग ढंग से होता है।

गर्भधारण के समय किसी भी भ्रूण को उसका गुणसूत्र द्वारा निर्धारित लिंग प्राप्त होता है। इससे तय होता है कि उसमें अंडाशय विकसित होंगे या वृषण। मादा मनुष्यों में मादा अंग तो हारमोन की किसी तरह की मदद के बगैर स्वतः विकसित हो जाते हैं और वुल्फियन नलिका मुरझा जाती है। अलबत्ता, पुरुष बनने की प्रक्रिया कहीं ज़्यादा पेचीदा होती है। जहां मादा के विकास के लिए किसी हारमोन की ज़रूरत नहीं होती, वहीं नर के विकास के लिए दो तरह के हारमोन्स की ज़रूरत होती है: एक तो वृषण से मिलने वाले एंड्रोजेन्स जो वुल्फियन नलिका को विकसित होने का संकेत देते हैं, और दूसरा पदार्थ मुलेरियन नलिका के विकास को रोकने वाला पदार्थ होता है जो नर भ्रूण में स्त्री गुणों को समाप्त करता है।

पिलार्ड का अंदाज़ है कि मुलेरियन अवरोधक हारमोन या इसी तरह के किसी पदार्थ का असर मस्तिष्क के संयोजन पर होता होगा। पिलार्ड मानते हैं कि इस पदार्थ की अनुपस्थिति या पूरी तरह सक्रिय न हो पाने की स्थिति में मस्तिष्क का पूर्ण डीफेमिनाइज़ेशन नहीं हो पाता और यह 'मनोलैंगिक पुरुष-स्त्रीत्व' के लिए ज़िम्मेदार होता है। इस मत के अनुसार समलैंगिक पुरुष मूलतः मर्दाना नर हैं जिनमें स्त्रीगत पहलू हैं। इन पहलुओं में शायद संज्ञान व भावनात्मक पहलू भी शामिल होंगे। इस मत के मुताबिक लेस्बियन स्त्री उसे माना जाएगा जिसमें जीव वैज्ञानिक रूप से कुछ नर पहलू समा गए हैं।

इस मत के लिए प्रायोगिक आधार कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के मनोचिकित्सक रिचर्ड ग्रीन के शोध से मिला है। यह शोध दर्शाता है कि जेंडर-गैर-अनुकूल खेल प्रायः समलैंगिक होते हैं। ग्रीन का निष्कर्ष है कि किशोर वय से पूर्व के लड़कों में जेंडर-गैर-अनुकूल खेल - जैसे महिलाओं की पोशाक पहनना, गुड़ियों से खेलना, या घर-घर खेलते समय मां की भूमिका लेना - 75 प्रतिशत मामलों में समलैंगिक रुझान का संकेत देते हैं। यदि यह सही है, तो यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह एक ऐसे लक्षण का उदाहरण है जिसमें यौन व्यवहार शामिल नहीं है। इससे पता चलता है कि लैंगिक रुझान कितनी गहराई में जड़ें जमाए होता है।

शोध की इस धारा की चर्चा करते हुए साइमन लीवे ने मुझे बताया था, ''जंतुओं पर किए शोध से यह बात जानी-मानी है कि लिंग-गैर-अनुकूल खेल हारमोन के नियंत्रण में होता है। रॉबर्ट गॉय ने पिछले वर्षों में कई अध्ययन किए हैं जिनसे पता चलता है कि लिंग-गैर-अनुकूल खेल व्यवहार को आप जन्म-पूर्व अवधि में हारमोन के साथ छेड़छाड़ करके पलट सकते हैं। खेल समलैंगिक व्यक्तियों में एक ऐसे लिंग-विपरीत लक्षण का उदाहरण है जो यौन से सीधे-सीधे सम्बंधित नहीं है। यह यौन नहीं है, खेल है। जब आप वयस्क अवस्था में पहुंचते हैं, तब ये चीज़ें गड्ड-मड्ड हो जाती हैं। किसी समलैंगिक बच्चे की पहचान करना ज़्यादा आसान है बनिस्बत किसी समलैंगिक वयस्क के। अधिकांश समलैंगिक पुरुष, चाहे वयस्क के रूप में कितने ही मर्दाना हों, याद करते हैं कि बचपन में उन्होंने कुछ जेंडर-गैर-अनुरूप व्यवहार किए थे।''

पिलार्ड-वाइनरिच सिद्धांत इस बात से भी मेल खाता है कि लैंगिक विभेदन की प्रक्रिया के दौरान नर दुर्बलता देखी जाती है। आम तौर पर मादा भ्रूण की अपेक्षा ज़्यादा नर भ्रूण अस्तित्व में आते हैं मगर जन्म के समय दोनों की संख्या लगभग बराबर रहती है। इसका मतलब है कि लिंग से जुड़ी कोई प्रक्रिया ज़रूर है जो नरों की संख्या को कम करती है। दरअसल, कई सारी गड़बड़ियां स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में ज़्यादा आम हैं। इनमें से कुछ समस्याएं शायद नर लिंग बनने के दौरान उत्पन्न होती होंगी। हालांकि बहुत अच्छे आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, मगर ऐसा लगता है कि हरेक समलैंगिक स्त्री की तुलना में दो समलैंगिक पुरुष होते हैं। यह तथ्य नर दुर्बलता के सिद्धांत के अनुरूप ही है।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि हालांकि समलैंगिक व विषमलैंगिक व्यक्ति कतिपय मामलों में 'उलट-लिंग' होते होंगे, मगर कई मामलों में ऐसा नहीं होता। मसलन, समलैंगिक पुरुषों और विषमलैंगिक पुरुषों को इस बात को लेकर कोई भ्रम नहीं होता कि वे किस लिंग के हैं। वे पुरुष हैं। लीवे कहते हैं, ''व्यक्ति सिर्फ अपना शिश्न देखकर नहीं मान लेता कि चलो मैं पुरुष हूं। ऐसा लगता है कि कुछ आंतरिक छवि होती है जो आपको बताती है कि आपका लिंग क्या है, यह छवि आपके बाह्य रूप-रंग से स्वतंत्र होती है। मैं समझता हूं कि अधिकांश समलैंगिक पुरुष अपने अंदर कुछ स्त्रीत्व के प्रति सचेत होते हैं मगर जेंडर पहचान को लेकर कोई उलटफेर नहीं होता।'' समलैंगिक पुरुष और विषमलैंगिक पुरुष दोनों में एक से अधिक यौन-साथियों की आकांक्षा प्रबल होती है जबकि लेस्बियन स्त्रियों में कम से कम यौन-साथियों की आकांक्षा मुखर होती है।

हारमोन सम्बंधी शोध शायद परिस्थितिजन्य ढंग से यह दर्शाता है कि लैंगिक रुझान में जीव विज्ञान का कुछ हाथ है। विलियम बायन चेतावनी के रूप में कहते हैं, ''यदि जन्म-पूर्व हारमोन परिकल्पना सही होती, तो हमें अपेक्षा करनी चाहिए कि बड़ी संख्या में समलैंगिक व्यक्तियों में जन्म-पूर्व अंतःस्रावी गड़बड़ियों के प्रमाण मिलेंगे - जैसे यौन

अंगों या प्रजनन अंगों में विकृतियां। मगर ऐसा कुछ दिखता नहीं है।" इसके अलावा हारमोन सम्बंधी शोध इस बारे में कुछ कहता ही नहीं कि यदि हारमोन ही लैंगिक रुझान का निर्धारण करते हैं, तो हारमोन का निर्धारण कौन करता है।

जिनेटिक तलाश

1963 में येल विश्वविद्यालय में एक भारतीय अतिथि वैज्ञानिक कुलबीर गिल मादा वंध्यता के कारणों पर शोध कर रहे थे। उनके प्रयोगों में *ड्रॉसोफिला मिलेनोगेस्टर* नामक मक्खी को एक्सरे के संपर्क में रखकर उसकी संतानों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता था। गिल ने देखा कि उत्परिवर्तित नर मक्खियों का एक समूह ऐसा था जो अन्य नरों के साथ प्रणय प्रदर्शन करता था, एक-दूसरे का पीछा करता था और अपने पंखों को प्रणय गीत की शैली में फड़फड़ाता था। गिल ने ये परिणाम *ड्रॉसोफिला इंफॉर्मेशन सर्विस* में प्रकाशित कर दिए और एक बार फिर मादा वंध्यता सम्बंधी अपने प्रयोगों में भिड़ गए।

एक दशक बाद ब्रांडिस विश्वविद्यालय के जेफ्री हॉल ने गिल के विचित्र परिणाम देखे। ड्रॉसोफिला में खोजे गए हर उत्परिवर्तन को एक नाम दिया जाता है औऱ गिल ने भी उनके द्वारा देखे गए उत्परिवर्तन को एक नाम दिया था - 'फ्रूटी'। हॉल को लगा यह नाम उतना बढ़िया नहीं है, लिहाज़ा उन्होंने इसका नाम बदलकर रखा 'फ्रूटलेस'। हॉल ने यह दर्शाया कि यह उत्परिवर्तन दो अलग-अलग व्यवहार उत्पन्न करता है। पहला, फ्रूटलेस युक्त नर मक्खियां (गैर-उत्परिवर्तित नर मक्खियों के विपरीत) अन्य नर मक्खियों और मादा मक्खियों दोनों से प्रणय निवेदन करती हैं। मगर किसी कारण से वे इनमें से किसी के साथ भी संभोग करने में असफल रहती हैं। दूसरा, फ्रूटलेस-युक्त नर मक्खियां अन्य नरों के प्रणय निवेदन को भी स्वीकार करती हैं, जिसे गैर-उत्परिवर्तित नर मक्खियां अस्वीकार करती हैं।

ड्रॉसोफिला दो-तीन महीने जीती हैं और यह द्विलैंगिक किस्म सैकड़ों पीढ़ियों तक यथावत अस्तित्व में बनी रही है। कुछ जीन उत्परिवर्तन मक्खियों के लिए जानलेवा साबित होते हैं; फ्रूटलेस वैसा नहीं है। यह कोई रोग भी पैदा नहीं करता। हॉल के मुताबिक यह एक गैर-रोगजनक जिनेटिक उत्परिवर्तन है जो एकरूप ढंग से जटिल व्यवहार पैदा करता है। और यह मानकर कि कई लोग ऐसा ही फ्रूटलेस उत्परिवर्तन इन्सानों में भी खोजने की कोशिश करेंगे, हॉल कहते हैं कि यदि ऐसा उत्परिवर्तन मिल गया तो भी हम हूबहू एक-से जुड़वां व्यक्तियों में समलैंगिकता की व्याख्या नहीं कर पाएंगे। उनके मुताबिक तो जिनेटिक जानकारी के आधार पर आप कुछ नहीं समझ पाएंगे। कारण यह है कि व्यवहारों का निर्धारण एकाधिक जीन्स से और अन्य कई अज्ञात कारकों के मिले-जुले प्रभाव से होता है।

अलबत्ता, अनिश्चितताएं जो भी हों, मगर गौर करने की बात यह है कि जिनेटिक खोजबीन काफी ज़ोरदार रही है। जैसे, पिलार्ड व बैली द्वारा लेस्बियन जुड़वां पर किया गया अध्ययन पुरुष जुड़वां सम्बंधी मूल अध्ययन के परिणामों को ही दोहरा रहा है।

मगर ज़्यादा रोचक सवाल यह नहीं है कि क्या जिनेटिक्स समलैंगिकता में कोई भूमिका निभाती है, बल्कि यह है कि कैसे। क्यों प्रकृति ऐसे जीन्स को संरक्षित रखती है जो यौन व्यवहार को बदलते हैं और प्रजनन में कोई मदद नहीं करते। क्या 100 प्रतिशत से कम आनुवंशिकता का अर्थ यह है कि बैली और पिलार्ड का अध्ययन लैंगिक रुझान के द्विध्रुवीय मॉडल के साथ मेल नहीं खाता। अपने अध्ययन में लीवे ने समलैंगिकता को व्यक्ति की यौन-पसंद के लिंग आधार पर परिभाषित किया थाः पुरुष या स्त्री, समलैंगिक या विपरीत लैंगिक। पिलार्ड और बेली का मॉडल बहु-लाक्षणिक है। इसमें लैंगिक रुझान और उसकी उत्पत्ति व कारणों की एक निरंतरता है जिसमें विभिन्न सोपान हैं। यह 'या तो यह या वह' की अपेक्षा कहीं ज़्यादा पेचीदा व बारीक है। और शायद यह यथार्थ की विशिष्टताओं और अस्पष्टताओं का बेहतर प्रतिबिंब है।

विज्ञान के लिए निहितार्थ

तो इस सबका मतलब क्या है? जैसा कि हमने देखा, वैज्ञानिकों को निष्कर्षों के लिए एकदम अलग-अलग अध्ययनों के अस्पष्ट परिणामों की खाक छाननी होगी। और इन

अध्ययनों के परिणामों की व्याख्या भी कोई सहज काम नहीं है। फिर भी, शुरुआती दौर में ही इतना तो स्पष्ट होने लगा है कि मानव लैंगिक रुझान के निर्धारण में जैविक कारक कुछ भूमिका तो निभाते हैं। रिचर्ड ग्रीन बताते हैं, "मुझे शंका है कि आपके जीवन काल में हम मानव लैंगिक रुझान में योगदान देने वाला जीन खोज लेंगे।" माइकल बैली कहते हैं, "मैं शर्त लगाता हूं कि समलैंगिकता जैविक रूप से निर्धारित होती है।" तंत्रिका जीव विज्ञान और जिनेटिक शोध रफ्तार पकड़ रहा है।

अलबत्ता, यह खोज विरोधियों से मुक्त नहीं है। कुछ लोग पहले आज़माए गए समलैंगिकता के मनोचिकित्सकीय 'उपचारों' को याद करके जीव वैज्ञानिक तलाश में जीनोसाइड के बीज देखते हैं। वे ऐसे नज़ारों की कल्पना करते हैं जब समलैंगिक व्यक्तियों को शल्य क्रिया अथवा रसायनों के ज़रिए 'दुरुस्त' किया जाएगा या उन्हें भ्रूण में ही पहचानकर गर्भपात करवाए जाएंगे। पेटाटुची कहते हैं, "मुझे लगता है कि इस क्षेत्र में काम करने वाले हम सब लोगों को यह भ्रांति है कि हम इस बात पर नियंत्रण कर पाएंगे कि इस ज्ञान का उपयोग किस तरह किया जाएगा।" यकीनन, दुरुपयोग की आशंका है, मगर यह बात तो समस्त जैव-चिकित्सकीय ज्ञान के बारे में कही जा सकती है। यह शंका इस ज्ञान को तिलांजलि देने का कारण नहीं हो सकती, जबकि संभावित लाभ भी काफी हैं।

कुछ लाभ परोक्ष हो सकते हैं। लौरा एलेन बताती हैं कि आज कई रहस्यमय बीमारियां हैं - ऑटिज़्म, डिसलेक्सिया, शिज़ोफ्रेनिया जो स्त्रियों व पुरुषों को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती हैं। ये मनुष्य के शरीर व मस्तिष्क के ऐसे हिस्सों में छिपी होती हैं जहां हम नहीं पहुंच सकते। लैंगिक अंतरों की तंत्रिका जीव वैज्ञानिक खोज हमें इन बीमारियों का इलाज ढूंढने में मदद कर सकती है। इसे लैंगिकता समेत कई रहस्यों को सुलझाने में भी मदद मिल सकती है।

और वह सवाल तो है ही जहां से हमने शुरुआत की थी - अमरीकी समाज में समलैंगिक लोगों की स्वीकार्यता का सवाल। समलैंगिकता जो चुनौती पेश करती है वह समावेश की चुनौती है। जैसा कि एवलीन हुकर कहती हैं, तथ्यों को बोलने दिया जाना चाहिए। पांच दशकों के मनोचिकित्सकीय प्रमाण दर्शाते हैं कि समलैंगिकता अपरिवर्तनीय है और कोई रोग नहीं है। हालिया प्रमाण दर्शा रहे हैं कि लैंगिक रुझान के विकास में जीव विज्ञान का योगदान है।

कुछ लोग पूछेंगेः एक ऐसे गुणधर्म के आधार पर कुछ लोगों के साथ भेदभाव को कैसे उचित ठहराया जा सकता है? कई लोगों का जवाब होगाः कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता। फिर भी यह स्वीकार करना अक्लमंदी होगी कि अधिकारों की इमारत खड़ी करने के लिए विज्ञान एक कमज़ोर बुनियाद है। विज्ञान आलोकित कर सकता है, मार्गदर्शन दे सकता है, उन मिथकों को तोड़ सकता है जिनके भरोसे हम जीते आए हैं। विज्ञान वस्तुनिष्ठ भेद भी कर सकता है - जैसे लैंगिक बीमारियों और लैंगिक रुझानों के बीच। मगर हम विज्ञान पर भरोसा नहीं कर सकते कि वह मानव अधिकारों, मानव स्वतंत्रता, मानव सहिष्णुता जैसे मुद्दों पर बुनियादी सवालों के संपूर्ण जवाब उपलब्ध करा देगा। अमरीकी जीवन में समलैंगिक लोगों का मुद्दा प्रयोगशाला में पैदा नहीं हुआ था। इसको सुलझाने के लिए जो सिद्धांत चाहिए, वे भी प्रयोगशाला में नहीं बनेंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत 150 रुपए *संस्थागत 300 रुपए*

सदस्यता शुल्क एकलव्य, भोपाल के नाम ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

ई-10,शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।